E-Learning material prepared by Dr. Dhananjay Vasudeo Dwivedi, Assistant Professor, Department of Sanskrit, Dr. Shyama Prasad Mukherjee University, Ranchi

अभिज्ञानशाकुन्तलम् में अलंकार योजना

डा० धनञ्जय वासुदेव द्विवेदी

सहायक प्रोफेसर, संस्कृत विभाग,

डा० श्यामा प्रसाद मुखर्जी विश्वविद्यालय, राँची

जिस प्रकार लोक में सौन्दर्य की अभिवृद्धि के लिये आभूषणादि अपेक्षित होते हैं उसी प्रकार कविताकामिनी को आकर्षक और भावस्पर्शी बनाने के लिये भी अलङ्कारों की आवश्यकता होती है। अलङ्कार शब्द की व्युत्पति भी इसी तथ्य का प्रकाशन करती है-'अलं करोति इति अलंकारः' अथवा 'अलंक्रियते अनेन इति अलङ्कारः'। अलङ्कार की इसी अर्थवत्ता के कारण आचार्यों ने अपने-अपने काव्य-लक्षणों में उसे समुचित स्थान दिया है। एक ओर जहाँ भामह, जयदेव आदि काव्य में अलङ्कार का प्राधान्य स्वीकार करते हैं, वहीं दूसरी ओर भरत, आनन्दवर्धन, मम्मट, विश्वनाथ आदि आचार्य अलङ्कार की गौणता को ही मान्यता प्रदान करते हैं। काव्य के क्षेत्र में भी इस दृष्टि से कवियों के दो वर्ग हो जाते हैं। एक वर्ग में वे कवि हैं जिनकी दृष्टि अलङ्कारपरक है। काव्य-जगत् के अलङ्कृत मार्ग के कवि इसी श्रेणी में आते हैं। दूसरी कोटि में रससिद्ध मार्ग के कवि आते हैं जो आत्मतत्त्वभूत रस को प्रधान मानकर सौन्दर्य-साधन के रूप में ही अलङ्कारों का प्रयोग करते हैं।

महाकवि कालिदास स्वभावतः रससिद्ध कवि हैं, अतः वे अलङ्कार की उपयोगिता तथा गौणता दोनों को अच्छी प्रकार समझते हैं। इसीलिये अलङ्कार के प्रयोग में वे अपनी रसमर्मज्ञता का ही परिचय देते हैं। अपनी कविताकामिनी की सौन्दर्यवृद्धि तथा भावाभिव्यञ्जना के लिये वे अलङ्कारों का प्रयोग अवश्य करते हैं परन्तु वे उसे (कविताकामिनी को) अलङ्कारों के अनावश्यक भार से आक्रान्त नहीं करते।

अलङ्कार के शब्दालङ्कार तथा अर्थालङ्कार ये दो भेद होते हैं। चित्रकाव्य के चित्रकार कवि शब्दालङ्कारों के ऊपर अधिक बल देते हैं। इसके विपरीत रसवादी कवियों की दृष्टि शब्दालङ्कारों की अपेक्षा अर्थालङ्कारों पर अधिक केन्द्रित होती है। यही कारण है कि भाषा की सरसता एवं लालित्य के कारण कालिदास की कृतियों में अनुप्रास अलङ्कार प्रायः दृष्टिगोचर होता है पर श्लेषादि अलङ्कार के

दर्शन कम ही होते हैं। अर्थालङ्कारों में उन्होंने अपनाया तो सभी को है, पर उपमा, उत्प्रेक्षा, दृष्टान्त, अर्थान्तरन्यास, अप्रस्तुतप्रशंसा, अतिशयोक्ति, अपह्नुति, तुल्ययोगिता आदि पर उनकी दृष्टि विशेष रूप से केन्द्रित है। किन्तु जिस अलङ्कार के कारण उनकी कीर्ति कौमुदी दिदिगन्त में व्याप्त हो रही है वह है उपमा अलङ्कार। आलोचकगण की निम्नांकित उक्ति सभी का कण्ठहार बनी हुई है-

उपमा कालिदासस्य भारवेर्थगौरवम्।

दण्डितः पदलालित्यं माघे सन्ति त्रयो गुणाः।।

उपमा कालिदासस्य

उपमा का इतिवृत्त अति चिरन्तन है। ऋग्वेद से लेकर आज तक के निर्मित काव्य-जगत् में वह अधिष्ठात्री देवी की भाँति मूर्धन्य स्थान पर प्रतिष्ठित है। उसका क्षेत्र इतना विशाल है कि सादृश्यमूलक रूपक, उत्प्रेक्षा, अतिशयोक्ति, उपमेयोपमा, सन्देह, अपह्नुति, दीपक, निदर्शना आदि अलङ्कार मूल रूप से उसी से सम्बद्ध हैं। इसीलिए आचार्य अप्पयदीक्षित अपने चित्रमीमांसा नामक ग्रन्थ में उपमा को एक ऐसी नटी बतलाते हैं जो काव्य रूपी रङ्गमंच पर विभिन्न रूपों में अपना नृत्य दिखलाती हुई काव्यरसिकों के चित्त को हठात् आनन्दित करती है-

उपमैका शैलूषी सम्प्राप्ता चित्रभूमिकाभेदान्।

एजयन्ती काव्यरङ्गे नृत्यन्ती तद्विदां चेतः।।

आचार्यों ने उपमा अलंकार के अनेक भेद गिनाये हैं। कालिदास के कायों में यत्र-तत्र सभी भेदों के दर्शन होते हैं। कालिदास की उपमाओं में रमणीयता, विविधता, यथार्थता और औचित्यादि के दर्शन होते हैं। यहाँ उपमा सम्बन्धी कुछ वैशिष्ट्य प्रस्तुत किये जाते हैं-

१. यथार्थता तथा भावाभिव्यञ्जकता- कालिदास की उपमायें प्रसङ्गानुकूल होती हैं और उनमें यथार्थता होती है। यथार्थता के कारण उनके (उपमाओं के) माध्यम से भावों की व्यञ्जना कराकर वे यथार्थ बिम्ब खड़ा कर देते हैं। रघुवंश में वर्णित स्वयंवर में इन्दुमती जयमाल लिये जिस-जिस राजा को छोड़कर आगे बढ़ जाती है उसके मुख पर नैराश्य की कालिमा उसी प्रकार छा जाती है जिस प्रकार रात्रि में राजमार्ग पर आगे बढ़ने वाली दीपशिखा के द्वारा छोड़े गये भवन तिमिराच्छन्न हो जाते हैं। यहाँ इन्दुमती की उपमा दीपशिखा से और भूमिपालों की उपमा राजपथ के भवनों से देकर कालिदास ने

राजाओं के अन्त में छिपे नैराश्य को कितने सुन्दर ढंग से अभिव्यक्त किया है। इसी औपम्यविधान के कारण कालिदास 'दीपशिखा कालिदास' कहे जाते हैं-

"संचारिणी दीपशिखेव रात्रौ यं यं व्यतीयाय पतिंवरा सा।

नरेन्द्रमार्गाट्ट इव प्रपेदे विवर्ण भावं स स भूमिपालः।।

२. मनोवैज्ञानिता- कालिदास के औपम्य-विधान में उनकी मनोवैज्ञानिक सूझ का परिचय मिलता है। कुमारसम्भव के पञ्चम सर्ग में जब कटुवादी ब्रह्मचारी से क्रुद्ध होकर पार्वती जाने के लिये उद्यत होती हैं तो उसी समय प्रकट होकर शङ्कर उन्हें रोक लेते हैं। उस समय उनकी दशा मार्ग में पर्वत के द्वारा रोकी गयी उस क्षुब्ध नदी की भाँति हो जाती है जो न बढ़ पाती है और न रुक ही पाती है-

"तं वीक्ष्य वेपथुमती सरसाङ्गयष्टिर्निक्षेपणाय पदमुद्धृतमुद्वहन्ती।

मार्गाचलव्यतिकराकुलितेव सिन्धुः शैलाधिराजतनया न ययो न तस्थौ"।।

३. उपमान ग्रहण में व्यापकता- कालिदास ने औपम्य-विधान में उपमानों का चयन इतने व्यापक क्षेत्र से किया है कि उनकी उपमाओं का जगत् विशाल हो गया है। आकाश-पाताल, पशु-पक्षी, वन उपवन, लोक शास्त्र सभी क्षेत्रों से उन्होंने आवश्यकतानुसार उपमानों का चयन करके अपनी उपमा को सर्वव्यापी बनाया है। शास्त्रीय उपमानों के द्वारा वस्तु-सौन्दर्य का वर्णन करने में भी कालिदास नितान्त दक्ष हैं।

४. प्राकृतिक उपदानों का साहाय्य- कालिदास ने प्रकृति के उपादान को लेकर सौन्दर्य का मूर्तिमान् और आकर्षक स्वरूप खड़ा करने में भी सफलता प्राप्त की है। एतदर्थ अभिज्ञानशाकुन्तल के निम्नाङ्कित स्थल द्रष्टव्य हैं-

अधरः किसलयरागः कोमलविटपानुकारिणौ बाहू।

कुसुममिव लोभनीयं यौवनमङ्गेषु सन्नद्धम्।।

अर्थात् अधरोष्ठ नवपल्लव के समान लाल है, दोनों बाहें कोमल शाखाओं के सदृश हैं और अङ्गों में फूल के समान लुभावना यौवन व्याप्त है।

पुनश्च

अनाघ्रातं पुष्पं किसलयमलूनं कररुहैरनाविद्धं रत्नं मधु नवमनास्वादितरसम्।

अखण्डं पुण्यानां फलमिव च तद्रूपमनघं न जाने भोक्तारं कमिह समुपस्थास्यति विधिः।।

अर्थात् बिना सूँघे हुए फूल की तरह, नखों से न मसले गए नवीन किसलय के समान, न बींधे गए रत्नों के तुल्य, न चखे हुए नवीन मधु के समान एवं पुण्यों के अखण्ड फल की तरह उस शकुन्तला का अनवद्य सौन्दर्य है। न जाने, विधाता इस संसार में किसको उसका उपभोक्ता बनाएगा।

५. सूक्ष्मभावाभिव्यञ्जकता- कालिदास मानव-मन की सूक्ष्मातिसूक्ष्म भावनाओं को भी अपने प्रातिभ चक्षु से जान लेते हैं और अपने अनुपम औपम्यविधान द्वारा उनका उद्घाटन भी बड़े सुन्दर ढंग से करते हैं। अपनी श्रेयसी शकुन्तला के प्रति उद्भूत भावनाओं के साथ कर्तव्यवश उसको छोड़कर-जाते हुए राजा दुष्यन्त के हृदय में जो एक अन्तर्द्वन्द्व खड़ा होता है। उसका औपम्य के द्वारा यथार्थ प्रकाशन कितना मनमोहक है-

गच्छति पुरः शरीरं धावति पश्चादसंस्तुतं चेतः।
चीनांशुकमिव केतोः प्रतिवातं नीयमानस्य।।

अर्थात् शरीर आगे की ओर जा रहा है और अपरिचित मन वायु के विरुद्ध ले जाए जाते हुए झण्डे के चीनी सूक्ष्म रेशमी वस्त्र की भाँति पीछे ही भाग रहा है।

६. औचित्य- कालिदास की उपमाओं में औचित्य का निर्वाह हुआ है। वे देश, काल, पात्र समस्त अवस्थाओं के अनुरूप काव्य के प्रत्येक शब्द में अर्थ भर देने में बेजोड़ हैं। शाकुन्तल के चतुर्थ अङ्क शकुन्तला के गान्धर्व विवाह का ज्ञान हो जाने पर उनका यह कथन इस बात का प्रमाण है-"दिष्ट्या धूमाकुलितदृष्टेरपि यजमानस्य पावक एवाहुतिः पतिता", यहाँ आश्रम पालिता शकुन्तला धूमाकुलितदृष्टि याज्ञिक की आहुति है और राजा दुष्यन्त यज्ञीय अग्नि। दुष्यन्त सुशिष्य के समान हैं और शकुन्तला उनको सौंपी गयी विद्या के समान। तपोवन जैसे स्थान में महर्षि कण्व जैसे वक्ता की दृष्टि में दुष्यन्त और शकुन्तला क्रमशः यज्ञीय अग्नि, सुशिष्य तथा हविष् एवं विद्या से भिन्न और क्या हो सकते हैं? इसी प्रकार शार्ङ्गरव की निम्नांकित उक्ति में भी औचित्य का भाव कूट-कूट कर भरा है। दुष्यन्त की दृष्टि में जो शकुन्तला 'अनाघ्रात पुष्प' थी वही शार्ङ्गरव की दृष्टि में मूर्तिमती सक्रिया हो जाती है-

त्वमर्हतामग्रसरः स्मृतोऽसि नः शकुन्तला मूर्तिमतीव सत्क्रिया।।

समानयंस्तुल्यगुणं वधूवरं चिरस्य वाच्यं न गतः प्रजापतिः।।

अर्थात् तुम हमारे प्रशंसनीयों में अग्रगण्य हो और शकुन्तला साकार पूजा है। इस प्रकार के समान गुण वाले वधू तथा वर को मिलाते हुए प्रजापति (ब्रह्मा) चिरकाल के पश्चात् निन्दा के पात्र नहीं हुए।

७. विराट् तत्त्व- शाकुन्तल के चतुर्थ अङ्क में पितृयोग से विकल होकर शकुन्तला पिता कण्व से लिपट जाती है और कहती है कि 'पिता से वियुक्त होकर वह कैसे जीवन धारण करेगी"? उसको समझाते हुए कण्व कहते हैं-

"तनयमचिरात् प्राचीवार्कं प्रसूय च पावनं।
मम विरहजां न त्वं वत्से शुचं गणयिष्यसि।।

यहाँ पर जिस भरत के नाम पर यह विशाल देश भारत कहलायेगा उस पुत्र की उत्पत्ति के लिये 'प्राचीवार्कं प्रसूय' इस औपम्य-विधान में कितना विराट् तत्त्व छिपा हुआ है? इसी प्रकार "अवेहि तनयां ब्रह्मन्नग्निगर्भा शमीमिव" इत्यादि स्थलों में भी कालिदास की अनुभूति की विशालता के दर्शन होते हैं।

उपमा अलङ्कार के लिये शाकुन्तल के निम्नाङ्कित स्थल दर्शनीय हैं-

क) "न खलु न खलु बाणः सन्निपात्योऽयमस्मिन् मृदुनि मृगशरीरे तूलराशाविवाग्निः"। अर्थात् इस कोमल मृग-शरीर (हरिण के शरीर) पर रुई के ढेर पर अग्नि के समान यह बाण न चलाइये।

ख) "सुरयुवतिसम्भवं किल मुनेरपत्यं तदुज्झिताधिगतम्।
अर्कस्योपरि शिथिलं च्युतमिव नवमालिकाकुसुमम्।।
अर्थात् शिथिल होने से मन्दार वृक्ष के ऊपर गिरे हुए चमेली के पुष्प की भाँति वह मुनि की सन्तान शकुन्तला निश्चय ही अप्सरा मेनका की पुत्री है और मेनका द्वारा छोड़ी जाने पर मुनि कण्व को प्राप्त हुई है।

ग) कृत्ययोर्भिन्नदेशत्वात् द्वैधीभवति मे मनः।
पुरः प्रतिहतं शैले स्रोतः स्रोतोवहो यथा।।
अर्थात् दोनों कार्यों (यज्ञरक्षा और माता के उपवास पारण में सम्मिलित होना) के भिन्न-भिन्न स्थानों में होने के कारण मेरा मन सामने स्थित पर्वत में टकराने वाले नदी-प्रवाह की भाँति दुविधा में पड़ गया है।

घ) दुष्यन्तेनाहितं तेजो दधानां भूतये भुवः।

अवेहि तनयां ब्रह्मन्नग्निगर्भां शमीमिव।।

अर्थात् हे ब्राह्मण, दुष्यन्त के द्वारा स्थापित तेज (वीर्य, सन्तान) को, पृथ्वी के कल्याण के लिए धारण करने वालि पुत्री शकुन्तला को अपने अन्दर अग्नि को धारण करने वाली शमीलता की भाँति समझो।

उपमा अलंकार के अतिरिक्त महाकवि कालिदास ने प्रायः सभी अलंकारों का प्रयोग किया है। अलंकारों के लिए अलंकारों का प्रयोग नहीं है। वे सहज और स्वाभाविक रूप में है, श्रमसाध्य नहीं। अलंकार भाव और भाषा को मनोरमता देकर रसपरिपाक में सहायक है। अर्थान्तरन्यास अलंकार के प्रयोग में भी महाकवि कालिदास सिद्धहस्त है। कालिदास के कुछ अर्थान्तरन्यास सुभाषित के रूप में प्रचलित हो गए हैं। उदाहरणार्थ-क) बलवदपि शिक्षितानामात्मन्यप्रत्ययं चेतः, ख) अथवा भवितव्यानां द्वाराणि भवन्ति सर्वत्र, ग) किमिव हि मधुराणां मण्डनं नाकृतीनाम्, घ) सतां हि सन्देहपदेषु वस्तुषु प्रमाणमन्तःकरणप्रवृत्तयः, ङ) कामी स्वतां पश्यति आदि।